भारतीय ज्ञान धरोहर

विमर्श और परंपरा

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान धरोहर

विमर्श और परम्परा

सम्पादक

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,

अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

प्रकाशक :
छवि पब्लिकेशन्स
अजमेर-305001
मो. 9660111549

संस्करण :
प्रथम 2023

ISBN : **978 - 81 - 89435 - 69 - 1**

मूल्य - 400/-

रचना - भारतीय ज्ञान धरोहर : विमर्श और परम्परा

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

3

सांख्य दर्शन में शिक्षा, शिक्षक एवं पाठ्यक्रम

डॉ. किरन भदेरिया
सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

प्राचीन भारत में शिक्षा का स्वरूप अत्यंत विस्तृत और जीवनोपयोगी था। सांख्य दर्शन ज्ञान और विवेक को मानव जीवन का मूल आधार मानता है, इसलिए उस समय की शिक्षा-पद्धति में भी तत्त्वज्ञान, अनुशासन तथा बहुविषयक अध्ययन को प्रमुख स्थान प्राप्त था।

वैदिक काल में छात्रों को मुख्यत: वेदों की शिक्षा दी जाती थी, किन्तु शिक्षा केवल वेदों तक सीमित नहीं थी। वेदों के साथ-साथ वेदांगों— शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष का अध्ययन आवश्यक माना जाता था। ये विषय वेदों को समझने, उच्चारण, अर्थ, सम्प्रेषण और याज्ञिक क्रियाओं को सही ढंग से सम्पन्न करने हेतु आधार प्रदान करते थे।

इसके अतिरिक्त विद्या के रूप में न्याय, मीमांसा और अन्य दार्शनिक शास्त्र, वाकोवाक्य (जहाँ ब्रह्म, आत्मा और यज्ञ आदि विषयों पर विमर्श होता था), इतिहास-पुराण तथा **गाथा नाराशंसी जैसे** विषय भी पाठ्यक्रम का हिस्सा थे। इनसे छात्रों को प्राचीन घटनाओं, परंपराओं, महापुरुषों के कृत्यों और नैतिक आदर्शों का ज्ञान मिलता था।

छान्दोग्य उपनिषद में वर्णित पाठ्यक्रम से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा अत्यंत समृद्ध और विविध थी। छात्रों को चारों वेदों के साथ इतिहास-पुराण (पंचम वेद), व्याकरण (वेदों का वेद), पिपय-विद्या (श्राद्ध आदि), राशि (गणित), देवम (अपशकुन एवं आकाशीय घटनाओं का ज्ञान), निधि (खाने-पीने एवं भंडारण की विद्या) तथा वाकोवाक्य (तर्कशास्त्र) का अध्ययन कराया जाता था।

इसके अतिरिक्त उन्हें एकायन (नीतिशास्त्र), देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूत-विद्या (जीव एवं प्राणि विज्ञान), शस्त्र-विद्या (युद्ध और व्यवस्था का ज्ञान), नक्षत्र-विद्या

(ज्योतिष), सर्प-विद्या, तथा देवजन-विद्या (नृत्य, संगीत, वाद्य, वास्तु एवं शिल्पकला) का प्रशिक्षण भी दिया जाता था। इसी प्रकार यज्ञशास्त्र की शिक्षा देकर उन्हें धार्मिक और सामाजिक अनुष्ठानों का व्यवहारिक ज्ञान प्रदान किया जाता था।

सांख्य दर्शन का मूल उद्देश्य ज्ञान द्वारा अविद्या का नाश करना है। अत: शिक्षा केवल विषय-ज्ञान तक सीमित न होकर मनुष्य को विवेकशील, अनुशासित, आत्म-नियंत्रित तथा व्यापक दृष्टि वाला बनाने की प्रक्रिया थी। शिक्षक (गुरु) का स्थान अत्यंत उच्च था, क्योंकि वह केवल पाठ पढ़ाने वाला नहीं था, बल्कि ज्ञान, चरित्र और अनुशासन का मूर्त रूप माना जाता था। वह विद्यार्थी को आत्मपरायणता, सत्य, विवेक और तत्त्वज्ञान की दिशा में मार्गदर्शन देता था।

बौद्ध काल में शिक्षा का स्वरूप अत्यंत व्यापक, बहुआयामी और अनुभवसमृद्ध था। इस काल में शिक्षा केवल धार्मिक या वैदिक ग्रंथों तक सीमित न रहकर व्यावहारिक, कलात्मक, दार्शनिक तथा राजनीतिक विषयों को भी समाहित करती थी। गुरुकुलों, विहारों और विश्वविद्यालयों विशेषकर तक्षशिला, नालंदा और वैशाली में शिक्षा का वातावरण विद्या-विस्तार और बहु-विषयी प्रशिक्षण पर आधारित था।

इस काल में छात्रों को वेद, वेदांग, ब्राह्मण साहित्य, उपनिषद, विभिन्न दर्शन, सूत्र-साहित्य तथा इतिहास जैसे साहित्यिक और दार्शनिक विषयों की शिक्षा दी जाती थी। ये विषय छात्रों को धार्मिक परंपराओं, तत्त्व-चिंतन, समाज-व्यवस्था तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का गहन ज्ञान प्रदान करते थे।

साहित्य और दर्शन के साथ-साथ शिल्प शिक्षा को भी समान महत्व मिला। जातक ग्रंथों से पता चलता है कि विद्यार्थी अट्ठारह प्रमुख शिल्पों का अध्ययन करते थे। अल्तेकर के मतानुसार इन शिल्पों में— वाद्य, गीत, नृत्य, चित्रकला, वास्तुकला, नक्षत्रज्ञान, अर्थशास्त्र, वार्ता, पशुपालन, व्यापार, धनुर्विद्या, आयुर्वेद, सर्पविद्या, तक्षण-कला (काष्ठ-शिल्प), इन्द्रजाल (जादू/चमत्कार-विद्या), गज-श्व परिचालन, कानून शास्त्र और मणिरागाकर ज्ञान (रत्न-ज्ञान) सम्मिलित थे।

इस प्रकार शिक्षा में कला, विज्ञान, वाणिज्य, चिकित्सा, कृषि और तकनीकी कौशल का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है।

महाभारत इस बात की पुष्टि करता है कि उस समय छात्रों को चतुर्वेद, षडंग वेदांग, दस भाग सहित धनुर्वेद, आख्यान, अर्थविद्या, इतिहास, योग, सांख्य, कर्मकाण्ड, दर्शन, उपनिषद, आयुर्वेद और शल्यचिकित्सा जैसे विषयों का व्यवस्थित रूप से अध्ययन कराया जाता था। इससे स्पष्ट है कि शिक्षा में दर्शन और तत्त्ववाद जितना महत्वपूर्ण था, उतना ही चिकित्सा और सैन्य-विद्या का भी स्थान था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में शिक्षा के चार प्रमुख क्षेत्रों का उल्लेख मिलता है—

(1) आन्वीक्षिकी (तर्क एवं दर्शन), (2) त्रयी (तीन वेद), (3) वार्ता (कृषि, पशुपालन, व्यापार), (4) दण्डनीति (राजनीति, शासन, प्रशासन)। इन विषयों का उद्देश्य राज्य-व्यवस्था, अर्थव्यवस्था, नीति और तर्क को सुदृढ़ बनाना था।

मनुस्मृति के अनुसार विद्यार्थी वैदिक साहित्य के अतिरिक्त दर्शन, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण, सूत्र, तर्कशास्त्र, नास्तिक शास्त्र, वार्ता और दण्डनीति का अध्ययन करते थे।

याज्ञवल्क्य स्मृति में चौदह विद्याओं—चार वेद, छह वेदांग, मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र—का उल्लेख मिलता है, जो उस काल के व्यापक पाठ्यक्रम का परिचय कराती है।

इस प्रकार बौद्ध काल में शिक्षा एक समन्वित और संतुलित व्यवस्था थी, जिसमें धार्मिक ज्ञान, तर्कशास्त्र, जीवन-व्यवहार, कला-कौशल, विज्ञान, राजनीति और प्रशासन सभी का समाहार था। यह शिक्षा-पद्धति छात्र को केवल विद्वान ही नहीं, बल्कि कुशल, व्यवहार प्रवीण, नीतिज्ञ और समाजोपयोगी व्यक्ति के रूप में विकसित करने पर केंद्रित थी।

बौद्धोत्तर और गुप्तोत्तर काल में शिक्षा-पद्धति अत्यंत समृद्ध, बहुमुखी एवं व्यापक थी। इस काल में अध्ययन-विषयों का दायरा इतना विस्तृत था कि साहित्य, दर्शन, कला, विज्ञान, राजनीति, आयुर्वेद, खगोल, गणित और युद्धशास्त्र सभी ज्ञान-क्षेत्र इसमें सम्मिलित थे। विभिन्न ग्रंथों और विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विवरणों से स्पष्ट होता है कि शिक्षा का उद्देश्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व-विकास था, जिसमें बौद्धिक, व्यावहारिक, नैतिक, सौंदर्यपरक तथा आध्यात्मिक सभी पक्षों को समान रूप से महत्त्व दिया गया।

मिलिन्दपन्हो में राजा मिलिन्द को 19 प्रकार की कलाओं व विद्याओं का ज्ञाता बताया गया है— श्रुति, स्मृति, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, दर्शन, गणित, संगीत, आयुर्वेद, धनुर्विद्या, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, इन्द्रजाल, कारण-कार्य संबंध, मंत्र, तंत्र, युद्ध-कला, कविता और मुद्रा-विज्ञान। यह सूची बताती है कि उस समय शिक्षा केवल धार्मिक ज्ञान तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह व्यावहारिक, तात्त्विक और संघर्षशील जीवन-तत्वों से सीधे जुड़ी हुई थी।

कालिदास ने चौदह विद्याओं का उल्लेख किया है—चारों वेद, छह वेदांग, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र। बाद में आयुर्वेद, गंधर्ववेद, धनुर्वेद और अर्थशास्त्र जैसे उपवेदों को जोड़कर इनकी संख्या 18 मानी गई। इस समय स्मृतियों और महाकाव्यों का नियमित अध्ययन भी होता था, जिससे छात्रों में साहित्यिक, नैतिक और सांस्कृतिक संवेदनाएँ विकसित होती थीं।

दण्डी ने पाठ्य-विषयों की अत्यंत विस्तृत सूची दी है, जिसमें विभिन्न लिपियाँ, भाषाएँ, वेद, वेदांग, उपवेद, काव्य, नाट्यकला, धर्मशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, तर्कशास्त्र, मीमांसा, राजनीति, संगीत, छन्द, रसशास्त्र, युद्धविद्या, द्यूत और चौर्य विद्या जैसे विषय सम्मिलित हैं। यह दर्शाता है कि शिक्षा में कलात्मक, साहित्यिक, व्यावहारिक और प्रशासनिक सभी क्षेत्रों का गहन अध्ययन आवश्यक माना जाता था।

वात्स्यायन ने 'चौंसठ कलाओं' का उल्लेख किया है, जिनका अध्ययन सुसंस्कृत महिला के लिए अनिवार्य माना गया। इन कलाओं में चित्रकला, संगीत, नाट्य, वस्त्र-विन्यास, नृत्य, सुलेख, शिल्प, पाककला, वाटिका-विधान, पुष्प-**स्तवक** निर्माण आदि अनेक कलात्मक और व्यावहारिक कौशल सम्मिलित थे।

बाणभट्ट के अनुसार इस काल में विद्यार्थियों को वेद, व्याकरण, मीमांसा, ज्योतिष, गणित, भूगोल, रसायन, भौतिक विज्ञान, दर्शन, नीति, इतिहास, साहित्य तथा संस्कृति जैसे विषय पढ़ाए जाते थे। यह सूची विज्ञान और दर्शन के सामंजस्य को रेखांकित करती है।

इत्सिंग के वर्णन से पता चलता है कि ब्राह्मण विद्यार्थी वेद, शास्त्र, छहों दर्शन, तर्कशास्त्र, पुराण, नाटक, स्मृतियाँ और काव्य का गहन अध्ययन करते थे और व्याकरण तथा तर्क पर विशेष जोर दिया जाता था।

युवानच्वांग के अनुसार उस काल में विद्यार्थी मुख्य रूप से पंच-विज्ञान और द्वादश अध्यायों का अध्ययन करते थे, जो शिक्षा के व्यवस्थित एवं संगठित होने का प्रमाण है।

इन सभी विवरणों से स्पष्ट है कि उस समय अध्ययन केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं था, बल्कि विचार-विनिमय, वाद-विवाद और गूढ़ताओं की मीमांसा का केंद्र भी था। ब्राह्मण परिषद अथवा वैदिक संघ में मेधावी छात्र एकत्र होकर जिज्ञासा शमन करते, दार्शनिक प्रश्नों पर विचार करते और अपने अनुसंधानात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत करते थे। यह प्रणाली आधुनिक सेमिनार और अकादमिक विमर्श की जितनी ही परिष्कृत थी, उतनी ही प्रभावी भी।

निष्कर्षत: वैदिक और उत्तरवैदिक शिक्षा स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व जैसे मूल्यों को धारण करती थी। इसका स्वरूप आध्यात्मिक, सर्वांगपूर्ण और जीवन-पर्यंत चलने वाला था। उपनिषदों का यह आदर्श—**'सा विद्या या विमुक्तये'** ज्ञान के माध्यम से मुक्ति प्रदान करने का संदेश देता है। आधुनिक शिक्षा में यदि इन मूल्यों और पद्धतियों को समाहित किया जाए, तो यह राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक सुदृढ़ता और व्यक्तिगत उत्कर्ष को अत्यंत सशक्त रूप में प्रोत्साहित कर सकती है।

✣✣✣